विशुद्ध राष्ट्रवाद को समर्पित प्रमुखतः विचार पाक्षिक

हिन्दु अस्मिता

विक्रम गणेश ओक

16, एम. आय. जी. (शॉप कम रेसीडेन्स) नन्दानगर, मेनरोड़
इन्दौर (म.प्र.) 452 08

वर्ष 1 अंक 7, रविवार, भाद्रप्रद कृष्ण 7, संवत् 2048/शके 1 13/दि. 1 सितम्बर 1991 संपादक विक्रम गणेश ओक (विक्रमसिंह) पृ. 4 मूल्य 1.50 पैसे वार्षिक रु. 40

यह शेखों की शेखी नहीं शेखमिजाजी है

–रामशास्त्री

शनिवार 10 अगस्त की सुबह 10 बजे राजधानी दिल्ली के अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे पर वैसे तो हमेशा की भांति यात्रियों और कर्मचारियों की चहल-पहल थी । पर हवाई अड्डा प्रशासन विशेष सतर्कता के साथ हैदराबाद आ रही फ्लाइट नं. आई.सी. 440 की प्रतीक्षा में था । यह सतर्कता किसी राजनेता के स्वागत या सुरक्षा के लिए नहीं तो सऊदी अरब के एक बूढ़े खूसट 61 वर्षीय शेख एच.एम. सगीश और उसके साथ आ रही 11 वर्षीय अमीना के लिए थी । बच्ची अमीना शेख की नातिन या पुत्री नहीं तो बाकायदा इस्लामी रश्मों-रिवाज के अनुसार निकाहशुदा बीवी थी । हुआ यह कि सुबह 8 बजे हैदराबाद हवाई अड्डे पर जब लोगों ने बुर्का ओढ़े एक बच्ची को रोते-सुबकते देखा तो 'अरे अपने को क्या लेना-देना है' सोचकर अधिकांश यात्री तो अपनी खुशी में मस्त थे । पर इस शहरी संस्कृति के अपवादस्वरूप कुछ लोग भी वहां थे । उन्हें शक हुआ तो कुछ पूछताछ की इतने में शेखमियां वहां पधार गए और उन्होंने फर्माया कि बच्ची उनके साथ है । लगता है कुछ यात्रियों ने अब चतुराई से काम लिया और हवाई सुन्दरी अमृता अहलुवालिया नें बड़ी ही तहजीब से शेख साहब से पिछली सीट पर तशरीफ रखने की गुजारिश की और बच्ची को अगली सीट पर बिठा कर उससे सारी जानकारी प्राप्त कर ली और स्पष्ट है कि वायुयान के कर्मचारियों ने दिल्ली में हवाई अड्डे को विस्तृत जानकारी देकर इस बूढ़े बालम के ख्वाबी आलम को ध्वस्त कर दिया वरना शेख मियां बच्ची को ले रियाद के लिए उड़ लेते ।

वायुयान सुबह 10 बजे जैसे ही दिल्ली के हवाई अड्डे पर उतरा पुलिस अधिकारियों ने शेख को हिरासत में ले लिया और दरिद्र आटो रिक्शा चालक और उसकी बीबी साबिका की कूल जमा नौ औलादों में से एक अमीना जो बदकिस्मती से आज हवाई जहाज में बैठी थी और जिसका रूदन पूरी यात्रा में चलता रहा जब दिल्ली में वायुयान से नीचे उतरी तो जमीन पर बैठकर रोने लगी हाथों में ढेर सारी चूड़ियां, पैरों में पायल, लंबी सी नकली चोटी और हाथ में पर्स लटकाये एक लड़की को इस प्रकार सुबकती देखकर दिल्ली के हवाई अड्डे पर भी यात्रियों का कोतुहल जाग उठा हो तो कोई आश्चर्य नहीं । शेख को जब पटियाला हाउस में मुंसिफ मजिस्ट्रेट ए.एस. यादव के न्यायालय में प्रस्तुत किया गया और इस प्रकार शेख, रियाद के बजाय अदालत पहुंच गये । बदनसीब शेख । आज तक 5-6 भारत आ चुका है और न जाने कितनी बच्चियों को अरबस्तानी हरमों में पहुंचा चुका होगा । कितनी नारकीय जीवन जी रही होंगी और कितनी अल्लाह को प्यारी हुई होंगी ! कोई हिसाब थोड़े रखा है ?

कहते हैं कि पकडा जाए तो चोर । वरना आज तक तो शेख एच.एम. सगीश दुनिया के आखिरी नबी की धाक सरजमीं की यह औलाद अपनी शेखमिजाजी में मस्त ही रही ना ! इसी मौजमस्ती की खातिर हैदराबाद, बंगलोर, औरंगाबाद, लखनऊ, मुम्बई बार्शी, मीरज के अड्डों से प्रतिवर्ष लगभग 15 हजार भारतीय युवतियां अरब देशों को भेजी जाती हैं । बच्ची अमीना ने बताया कि उसके गरीब बाप ने छह हजार रुपयों के बदले में उसे शेख के हाथों बेच दिया । हो सकता है कि उसके बाप को सिर्फ छह हजार रुपया ही मिला हो पर बीच के दलालों ने काफी माल छाना है । वरना आजकल लाख के नीचे तो सौदा होता ही नहीं और तेल से मालामाल बने अरब के शेखों के लिए लाख-दो लाख रुपया तो हाथ का मैल है । शेखों के शाही हरमों के सब्ज-बाग से ललचाई औरतें हो या नौकरी के बहाने ले जाई गई औरतें अरब देशों में शीघ्र ही वे नारकीय कुचक्र में फंस जाती हैं और उनकी जिन्दगी बरबाद हो जाती है । यह भयंकर पापाचार कोई आज की नई बात नही है । सत्तर के दशक से सिलसिला चल रहा है-बढ़ रहा है । मीरज में एक समय हिंदू एकता संगठन वालों ने संघर्ष छेड़ा था पर बाद में ठन्डा पड़ा । 1988 में अबूधाबी से प्रकाशित अरबी दैनिक अल इत्तिहाद ने चित्र सहित 85 वर्षीय एक शेख और क्रमशः 11 और 13 वर्ष की बेला और बतूल के साथ उसका निकाह का किस्सा छापा था । ये दोनों बच्चियां भारत के आंध्रप्रदेश के देहात की रहने वाली थीं । तब भारत की बड़ी बदनामी हुई और आज भी खूब हो रही है। आज शेख अमीना का यह नया प्रकरण विश्व में हमारी निर्लज्जता को प्रदर्शित कर रहा है । पर हम हैं जो देश की प्रतिष्ठा के बारे में चिंतित ही नहीं । जब एक नई कहानी सामने आती है तो कुछ हलचल होती है जैसे अभी हो रही है । देश-विदेश में अमीना के प्रति दया दिखाई जा रही है और हवाई सुन्दरी अमृता अहलुवालिया के प्रति धन्यवादभाव ! पर शीघ्र ही देश सब भूल जाता है । हमारे शासक, समाजसुधारक कुछ ऐसा निश्चय, निर्णय नही करते कि राजनीति के साथ हो रहे इस जघन्य अत्याचार को रोक दिया जाय ।

इस प्रकरण में एक दूसरा पहलू भी परिलक्षित होता है । और वह यह कि जो और जितना आक्रोश ऐसे मामलों में होता है कि वह सामान्यतया हिन्दू समाज के द्वारा ही होता है, जबकि पीड़ित नारी मुस्लिम समुदाय से होती है । इसी अमीना प्रकरण में देखा जाये तो जितनी भी संस्थाओं ने रूचि ली उनमें मुस्लिम संस्था का नाम दिखाई नही देता । लोकसभा में 27 मुस्लिम सांसद हैं पर शेख अमीना प्रकरण के निमित नारी के सम्मान हेतु पीड़ा व्यक्त करने वालों में उनमें से किसी का नाम पढ़ने को नही मिला ! मिलता भी क्यों ? उनकी धारणा तो ऐसी होती है कि इन अबलताओं के साथ किसी भी प्रकार का व्यवहार-अत्याचार क्यों न होता हो । वे आखिर रहती तो हैं हममजहबी घरों में ! उनका मजहब वैसे भी उन्हें बताता है कि "मर्द औरतों के सिरमोर हैं । कारण यह कि अल्लाह ने एक को एक पर प्रधानता दी है ।" (कुरान सूरे निसा आयत34) । कुरान उन्हें सीख देता है "तुम्हारी बीवियां (गोया) तुम्हारी खेतियां हैं । अपनी खेती में जिस तरह चाहो जाओ और अपने लिये आयन्दा का भी बंदोबस्त रखो ।" (कुरान सूरे बकर आयत223) और इसी कुरान की सूरे निसा की आयत 11 के अनुसार अल्लाह के हुक्म को आधार बनाकर एक दूसरी अमीना मुंबई उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री डी.आर. धानुका की न्यायालय में आवेदन करती है कि उसके नाबालिग बेटे मेहमद और बेटी शबाना के अभिभावक के रूप में उसे मान्यता दी जाये और मुस्लिम व्यक्तिगत कानून के अनुसार सम्पत्ति में बेटे मेहमूद को बेटी शबाना से दुगुना अधिकार दिया जाये ।

भारत के मुस्लिम समाज की मानसिकता के प्रति दया नही तो संदेह और आक्रोश इसलिये होता है कि दिसम्बर 1986 में बंगलोर के अंग्रेजी दैनिक 'डेक्कन हेराल्ड' में प्रकाशित कहानी 'मेहमूद इडीयट' के विरोध में कर्नाटक से फारमेदर तक का मुस्लिम समाज हिंसा और आगजनी पर इसलिए उतारू हुआ कि संयोग से उस गूंगे-बहरे मूर्ख मोहम्मद के बैलगाड़ी चलाने वाले बाप का नाम अब्दुल्ला था और माता का नाम अमीना । 17वर्ष की अवस्था वाले अब्दुल्ला का बच्ची अमीना से निकाह या फिर आगे दुनिया के आखिरी नबी मोहम्मद 7 वर्ष की अवस्था वाली बच्ची आयशा से निकाह, हमारी चर्चा में इसलिए महत्व नही रखते कि ये तो आज से 14सौ वर्ष पूर्व का और उस अरबस्तान का इतिहास है जिसके बारे में मुस्लिम इतिहासकारो का ही कहना है कि तत्कालीन समाज बहुत पिछड़ा हुआ था । पर हम मुसलमानों से इस बात पर तो चर्चा और सक्रियता की अपेक्षा रखते हैं कि जब एक कहानी में मुहम्मद के पिता के नाम संयोग के आधार पर वे कर्नाटक में कोहराम मचाते हैं तो मुहम्मद के की माता अमीना के संयोग के आधार पर वे गंदे बूढ़े शेख एच. एम. सगीश की भर्त्सना में क्यों कर आगे नही आते ? वे क्यों कर इस देश में एक ऐसा सामाजिक आंदोलन नही छेड़ते की भारत की एक भी अमीना, एक भी कन्या अरब की धरती पर नही जायेगी न शेखों के हरमों में बीवी बनकर, न उनके महलों में बांदी नौकरानी बनकर !

❋ ❋

मुस्लिमों से भी हम यही कहना चाहते हैं कि, तुम्हारा समाज भी जिन धर्मांध, जंगली धारणाओं तथा क्रूर आचारों से मानो सड़–गल रहा हैं ऐसे उपद्रवी आचारों और क्रूर धर्मांधताओं से शीघ्रातिशीघ्र मुक्त होने में ही तुम्हारा ही हित हैं ।........जूनी–पुरानी पिछड़ी संस्कृति से स्वयं को जकड़ कर यदि तुम काष्ठा रुपी रास्ते में बाधक बनोगे तो विज्ञान (रुपी घोड़े की) एड़ी से निश्चित हो कुचल दिए जाओगे । इसीलिए कुरान को शब्दशः शाश्वत और अनिवार्य ईशवचन मानने की सनातनी प्रवृत्ति का परित्याग कर कुरान का यथाउचित सम्मान करो ।

–वीर सावरकर

किसे पड़ी है चिन्ता

24 जुलाई 91 को देश के वित्तमंत्री ने बजट पेश प्रस्तुत किया। जनतन्त्र की परम्परा अनुसार शासकीय पक्ष ने बजट की प्रशंसा की और विपक्ष ने अपना आलोचना का धर्म निभाया। राजनीति वालों के लिये बात आई गई हो गई। पर अर्थशास्त्री और देश की आर्थिक अवस्था में अनुराग रखने वालों के लिए नवीन सरकार की अर्थनीति एक चर्चा का विषय आज भी बनी हुई है।

अर्थत्रास्त्रीय पद्धति से इस विषय की गहनता में जाना सामान्यजनों के लिये न तो सम्भव है न ही आवश्यक। फिर भी इतना तो बताना ही होगा कि देश की स्वाधीनता प्राप्ति के उपरान्त हमने नियोजित अर्थव्यवस्था की पद्धति स्वीकार कर देश का चहुँमुखी विकास और उन्नति करने का स्वप्न संजोया था। इस बात से भी नकारा करने की कोई आवश्यकता नहीं कि इसे अपनाने में हमारे सम्मुख साम्यवाद की प्रस्थापना का संकल्प लेकर विश्व के सामने एक आदर्श प्रस्तुत करने वाला सोवियत रूस था। देश के राजनीतिज्ञों ने ही नहीं तो अर्थविदों ने भी तत्समय नेहरू महालनोबिस विकास माडल को अपनाकर समाजवादी-समाजरचना के क्षितीज की ओर अपनी यात्रा आरम्भ की। नियोजित अर्थव्यवस्था रूस में सफल नहीं रही। हमारे देश में भी उसे सफल बताना एक साहस होगा। फिर भी शास्त्रीय दृष्टिकोण से नियोजित अर्थव्यवस्था को एक असफल प्रणाली के रूप में निरस्त करने जैसे प्रमाण आज भी जुटाये नहीं जा सके। कहना होगा कि जो असफलता हाथ लगी उसकी धरा में प्रणालीगत दोषों की अपेक्षा राजनीतिक सामाजिक हस्तक्षेप एवं परिस्थितयाँ ही बहुत अंशों में प्रभावी रही है।

हमारे पड़ौसी विदेशों के आक्रमणों ने हमारी योजनाओं को अत्यधिक हानि पहुंचायी है। कहना होगा कि श्रीमती ईंदिरा गांधी के समय से ही सत्ता को बनाये रखने की लालसा से देश की अर्थकता को भटकाया गया और आगे राजीव गांधी, जिन्हने आकाश की ऊँचाइयों से पश्चिमी राष्ट्रों की चकाचौंध को बार-बार देखा था उसे तुरत-फुरत अपने देश मे उतारने का कम्प्यूटरी स्वप्न संजोया। इस प्रकार बीसवीं सदी के नोवे दशक में ही इक्कसवीं सदी में पहुंचने के स्वप्न देखना कदाचित उनके युवा-स्वभाव के कारण हो। चहुंओर के भाट-चाटुकारों ने अपना धर्म बखूबी निभाया और इस साहसी युवा ने अपने नाना के माडल को धीरे से अलग रख 'झा-जालान-राजीव गांधी माडल' रूप से जाने जाने वाले आदर्श को अपनाया।

कहने को तो आज भी हम समाजवाद मे लक्ष्य सामने रखे हुए हैं। पर इस नवीन माडल के अनुसार पश्चिमी उपभोगवादी अर्थव्यस्था अर्थात अधिक उपभोग (मांग) अधिक उत्पादन-अधिक उपभोग (मांग) के चक्रव्यूह में हम बैठकर उसका आनन्द लेने लगे। वैसे अधिक उपभोग (मांग) सुखद होता है और बुरा भी नहीं। पर जब विश्व अर्थव्यवस्था के चक्कर झूले का नियंत्रण अपने हाथों में नहीं होता तो भारत जैसे विकासशील राष्ट्र के लिए जहाँ करोड़ों की संख्या में बेरोजगारी है और मानव का आयुमान साठ वर्ष से आगे बढ़ाने से विज्ञान के वरदानस्वरुप जनसंख्या 85 करोड़ से अधिक हैं, वहाँ जीवनावश्यक वस्तुओं का उत्पादन इस कारण अधिक नहीं बढ़ पाता कि उसमें लाभ का अंश कम होता है और लाभदायी आकर्षक के लुभावनी वस्तुओं का उत्पादन बाजार पाटने लग जाता है। ऐसे अनावश्यक आयात बढते चले जाते हैं और निर्यात के क्षेत्र में हम विश्व के उन्नत राष्ट्रों के सामने टिक नहीं पाते। विश्व के उन्नत औद्योगिक राष्ट्रों द्वारा उदारता का स्वांग रच कर हमें वह प्रविधि दी जाती है जो उनकी अर्थव्यवस्था में कालबाह्य हो चुकी है। और उसी को वरदान समझ हम आरामदायक वस्तुओं का उत्पादन बढ़ा कर राष्ट्र के नवीन युग में होने का सुख भोगना चाहते हैं। अमरीकी सीनेट की सशस्त्र सेना समिति द्वारा विगत दिनों दिये प्रतिवेदन के अनुसार विकाशशील देशों में भारत सैनिक औद्योगिक अनुसंधान का सबसे बड़ा आधार अवश्य रखता है तथापि अधिकांश में वह विदेशी प्रविधि की प्राप्ति पर ही निर्भर है। और लगभग यही बात अर्थ व्यवस्था के अन्य क्षेत्रों पर भी लागू होती है। हमने अपने स्वदेशी प्रविधि का निर्माण नहीं किया और विदेश पर ही अवलंबित है। यह नहीं है कि हमारे शास्त्रज्ञों में योग्यता की कोई कमी हो। तो फिर इस क्षेत्र में हम पिछड़े क्यों कर रहे है इस बात पर गंभीरता से विचार होना चाहिए। हो सकता है विदेशी तत्व और उनकी कुटील चालों में फंसनेवाली हमारी राजनीति इसके लिए उत्तरदायी हो। क्योंकि आज के युग मे राजनीति अर्थनीति समाज नीति एक दूसरे से प्रभावित होते रहती है। चन्द्रशेखर सरकार के वित्तमंत्री यशवन्त सिन्हा और कमल मोरार का कहना है कि आई एम.एफ. बिना अवमूल्यन के हमारी सहायता को पहले तैयार था पर चूंकि हमारे राजनीतिक कारणों से बजट समय पर प्रस्तुत नहीं हुआ तो इस विश्व संस्था के मन में भारत के वित्तीय स्थायित्व और राजनीतिक स्थायित्व के बारे में संदेह उत्पन्न हो गया और फिर अन्तरर्राष्ट्रीय ऋणों की प्राप्ति के लिए अवमूल्यन पूर्व शर्त बनी गयी। और गले गले तक ऋण में डूबे हमारे देश को उससे मुक्त होने के लिए अब नये ऋण लेने पड़े। वैसे इस आपात अवस्था में विदेशी ऋण नहीं लेने की बात करना भी हास्यास्पद ही है। माना कि देश के सकल उत्पादन की दृष्टि से हमारे सामने कोई संकट नही है। मकाम भले ही कम हो पर रोटी कपड़े की कमी नहीं है। पर एक तो आज के गरीब के लिए वह रोटी कपड़ा मंहगा है और आसपास के प्रदर्शन प्रभाव से वह भी स्वयं को मुक्त नहीं रख पा रहा है। स्थित्यन्तर की अवस्था में ऐसा होता ही है। पर इसलिए स्थियन्तर की अवस्था में अगामी परिवर्तनों पर राष्ट्र के नेतृत्व की पुरी पकड़ होनी चाहिए।

इस दृष्टि से राजनीति के मायाजाल से दूर रहे अर्थशास्त्री वित्तमंत्री श्री मनमोहन सिंह द्वारा अर्थव्यवस्था के सुधार की दृष्टि से कुछ नवीन नीति का अवलम्बन किया गया हैं। इसमें भारत में विदेशी पूंजी निवेश को बढ़ाने के लिये निजी उपक्रमों को शासकीय नियमों से मुक्त करना और अर्थव्यवस्था को सरकार पर कम और उद्योगों पर अधिक निर्भर करना जैसे पग उठाये गये है। पर इस मुक्तता में वह पुराना संकट तो विद्यमान है ही कि बिना नियन्त्रण के उद्योगपति अधिक लाभदायी उद्योगों की ओर आकृष्ट होंगे और अत्यावश्यक वस्तुओं का उत्पादन उपेक्षित ही रहेगा। इसीलिए कहना होगा कि वर्तमान कांग्रेस सरकार ने जिस अर्थनीति और उद्योगनीति का अवलंबन किया है वह अति शीघ्र ही उत्पादनवृद्धि से जनता को चमत्कृत भले ही कर दे। तथापि देश के विकास की दृष्टि से एक दीर्घकालीन नीति के रुप में सफल नहीं हो सकती। इस अर्थ में इस बदलाव को एक प्रयोगावस्था मानना ही उचित होगा।

वैसे इस बात से कैसे नकारा किया जा सकता है कि सत्ता मोह से ग्रसित राजनीति बाजों के तालाब में रहकर अर्थशास्त्री मनमोहनसिंह रुपी मछली मगरमच्छों से बैर कैसे भला मोल ले सकती हैं। इस दृष्टि से वह बड़ी ही कुशलता से परिवर्तनों को ला रहे हैं। थोक में परिवर्तनों की घोषणा कर घर में और बाहर कोई तूफान उठाने का अवसर ही उन्होंने नहीं दिया। मात्र विवशता के कारण वह भले ही यह घोषित न करे पर जानते अवश्य हैं कि विगत दस वर्ष की छलांगी राजनीति ने अर्थव्यवस्था को दुर्बल और जर्जर बना दिया हैं। जो वह बोल सकते हैं उसे वह बोले है कि जब सार्वजनिक रूप से यह कहा जाने लगा कि खजाना खाली है और जब अरबों रूपयों के ऋण माफ कर दिये गये तो अन्तरर्राष्ट्रीय देनदारों में यह भावना सहज ही उत्पन्न हुई वह दिन भी आ सकता है जब भारत सरकार उनका कर्ज चुकाने से मुकर जाए। इसी से सारी अर्थव्यवस्था चौपट हो गई। वित्तमंत्री ने जो कहा वह शतप्रतिशत सत्य है कृषि एवं ग्रामीण ऋण राहत योजना अन्तर्गत दो हजार सात सौ उनचास करोड़ रुपये के ऋण माफ किये गये है और बीमार उद्योगों को राजनीतिज्ञों की सिफारिश पर दिये ऋणों में से दस हजार करोड़ के ऋण डूब गये हैं।

राजनीतिबाजों ने विगत दस वर्षो से जो कुछ किया धरा है उसे देश को भुगतना ही होगा। मंहगाई सहनी होगी और किसी एक दल को आरोपी के पींजडे में खड़ा किया नहीं जा सकता। पहले कांग्रेस सत्ता में थी आज है। मध्यकाल में विश्वनाथ प्रताप सिंह थे और उन्हे साम्यवादी तथा भाजपायी समर्थन था तो उनके हटते ही चन्द्रशेखर बैठे। यहां तक की विपक्ष में बैठकर भी इन्होंने स्वार्थ ही साधा। वि.प्र.सिंह के समय एक वर्ष की सांसदी पेंशन का निर्णय और चन्द्रशेखर ने जाते जाते भत्ते आदि की जो सोगात दी उसे क्या कहा जायेगा। गोवा में सत्तारुढ कांग्रेस के इक्कीस विधायकों में चौदह मन्त्री है। उत्तरप्रदेश की नई सरकार ने हजारों डाक्टरों के स्थानान्तर किये। मध्यप्रदेश के मुख्यमन्त्री एक खालिस्तानी आतंतवादी के पकडे जाने पर प्रेस से बतियाने वायुयान से भोपाल से इन्दौर आते है अपने गृहजिले में हवाई पट्टी बनवाते है और गृहग्राम में 25 शायिकाओंवाला चिकित्सालय भी। यही हाल अन्य प्रदेश में हैं। ज्योतिषियों के चक्कर में फंसे प्रधानमन्त्री प्रधानमन्त्री आवास में न रहते हुये 3 रेसकोर्स रोड़ पर ही रहने वाले थे और उसपर 50 लाख रुपया खर्च होना था फिर लगता है देश के चोटी के वैज्ञानिकों ने प्रधानमन्त्री को इस अंधश्रद्धा पर चिंता व्यक्त करने वाला जो पत्र लिखा उसका सम्मान करते हुए प्रधानमन्त्री ने अपना निर्णय बदला। राज्यमन्त्री मार्गरेट अल्वा अपने बंगले की सजावट पर डेढ़ लाख का खर्च करवाये और तो और महामहिम राष्ट्रपतिजी के कुत्ते के पिल्ले के बीमार होने पर असाधारण व्यय हो, राष्ट्रपति आवास में हिरणों के लिये स्वतन्त्र प्रसूति ग्रह बनवाये तो गरीबों को कुछ न कुछ तो भुगतना ही होगा। ऐसे में प्रशंसा करनी होगी मराठी दैनिक समाचारपत्र लोकसता के सम्पादक श्री माधव गडकरी की सूझबूझ और साहस की कि उन्होंने 26 जुलाई को अपने समाचार पत्र में राष्ट्रपतिजी से निवेदन किया कि चिली आदि देशों की पाँच करोड़ व्यय की 15 दिनों की पूर्वनिश्चित विदेशयात्रा का विचार वह त्याग दे। उन्होंने जनता का आह्वान भी किया कि राष्ट्रपतिजी को तार और पत्रों से अधिकाधिक संख्या में निवेदन पत्र भेजे जाय और जनतन्त्र ने अपना चमत्कार दिखाया। राष्ट्रपतिजी ने जनता के आग्रह का सम्मान करते हुए अपनी विदेशयात्रा निरस्त कर दी। परिवार के स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर पर जो फिजुलखर्ची होती है उसे रोक कर देश अरबों रुपयों को बचा सकता है। माना कि देश का शासनतन्त्र राजनेताओं द्वारा ही चलाया जाता है पर समग्र रूप में देश को राजनेता नही चलाते। इसलिए आज जब देश को आर्थिक दासता से बचाने की समस्या है हमें राजनेताओं को अपना आदर्श नही बनाना चाहिये जब भाजपा के राज्यसभा सदस्य बेहिसाब होनेवाले चुनावी व्यय पर यह कह दे कि इससे कोई हानि नहीं, पैसा कहीं विदेश थोडे ही जा रहा है। बस इस हाथ से उस हाथ पहुंच रहा है तो ये राजनेता गरीब के फूटे मटके में रखा पैसा कुबेर की तिजोरियों में पहुंचाने में संकोच नहीं करेंगे। भले ही देश डूब जावे पर हमें तो हमारा देश बचाना है उसे बढ़ाना हैं। तो मतभेदों के होते हुए भी एक ईमानदार वित्तमन्त्री के ईमानदार प्रयासों में हमें सहयोग करना चाहिए।

जय हिन्दुराष्ट्र

विरोधाभाव को चिरजीवी शत्रुता . . . .

(पेज 4 से जारी)

परिणामस्वरूप मेरे किये हुये इस कार्य को देखकर जो दण्ड उचित समझें दें। इस विषय में कुछ कहने की मेरी कोई इच्छा नहीं है। मैं किसी प्रकार की दया नहीं चाहता। मैं यह भी नहीं चाहता कि मेरी ओर से कोई और दया की याचना करे।"

स्व. नाथूराम गोडसे ने अपने निवेदन के समापन पर लिखा है कि "मेरे कार्य की चारों ओर से निंदा हो रही है फिर भी मेरा कार्य नीति की दृष्टि से पूर्णतया उचित था। मेरे विश्वास की दृढ़ता कम नहीं हुई है मुझे इस बात में लेस मात्र भी संदेह नहीं कि भविष्य में किसी समय जब सच्चे इतिहासकार इतिहास लिखेंगे तो मेरे कार्य का सच्चा मूल्य आकेंगे।) गांधीजी का हत्यारा कहे जाने वाले नाथूराम गोडसे का उपर्युक्त कथन पूर्णतः साधिकार ही है। इतिहासकार को चाहिए कि वह घटनाओं को अपनी भावनाओं और कल्पना के अनुसार तोड़-मरोड़ कर नहीं तो 'इति ह सास' के शास्त्रादेश के अनुसार प्रस्तुत करे।

श्री गोपाल गोडसे पूरी सक्षमता के साथ वर्षो से इसी कार्य को कर रहे हैं। (गांधी वध और मैं) तथा (गांधी हत्या क्यों) ये उनके दो ग्रन्थ अनेक भाषाओं में, अनेक संस्करणों में प्रकाशित होकर हजारों की संख्या में बिक रहे हैं। लाखों पाठक इन ग्रंथों को पढ़ रहे है। गांधी वध और मैं ग्रंथ के प्रमुख का समापन वाक्य श्री गोपालजी की इन भावनाओं को स्पष्ट अभिव्यक्ति देता हैं। गोपालजी ने लिखा है "इस सम्पूर्ण घटनाक्रम को इतिहास की दृष्टि से ही देखा जाना चाहिए और उसी दृष्टि से उस पर विचार होना चाहिए। यही मेरा निवेदन है जिसे स्वीकार अथवा अस्वीकार करना पाठकों पर निर्भर है।" श्री गोपाल जी की ये भावनाएं निरपेक्ष एवं मानवमात्र के मूलभूत अधिकारों के अनुकूल ही है। अतः मुक्त विचारों के सुबुद्धजनों की इन भावनाओं से पूर्ण सहमति ही होगी।

हमारी असहमति यदि है तो मात्र इस विषय में कि गांधी हत्याकाण्ड का संबंध हिंदू महासभा से किसी भी प्रकार नहीं होने के कारण हिंदू महासभा के मंच का सहेतुक एवं सतत उपयोग गांधी हत्याकाण्ड के समर्थन में औचित्य प्रतिपादन में नहीं होना चाहिए। हमारा यह कथन मात्र तार्किक ही नहीं तो व्यावहारिक भी है। हमें भाजपा सहित अन्य समस्त दलों की इस राजनीति को समझना चाहिए कि वे दल गांधी हत्याकांड जैसे मुद्दे को सहेतुक उछाल कर हिंदू महासभा को राजनीति परिदृश्य से हटाने में सदा सचेष्ट रहे हैं। अभी 26 जुलाई को लोकसभा में अयोध्या विवाद में बिना किसी संबंध के अनावश्यक रूप से जनता दल सांसद देवेन्द्र यादव ने यह कहा कि "महात्मा गांधी की हत्या उन्हीं ताकतों ने की है जो अब मन्दिर उठाने के लिए सिर उठा रही है।" और इस अवसर से लाभ उठाते हुए कांग्रेस के मुकुल वासनिक ने गांधी की जगह गोडसे की मूर्ति लगाने की मांग करने का प्रसंग भी उठाया। इस विषय में एक महत्वपूर्ण प्रसंग का उल्लेख उचित होगा। 1986 के मई के अंतिम सप्ताह में अ.भा. विद्यार्थी परिषद के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री अशोक मोडक के साथ मेरी पूर्व निश्चित भेंट के अवसर पर मेरे साथ हिंदू महासभा के स्थानीय कार्यकर्ता थे तो अशोकजी के साथ भी विद्यार्थी परिषद के स्थानीय युवा कार्यकर्ता और विशेषकर एक व्यक्ति थे और यदि मेरे स्मरण में कोई त्रुटि न हो तो वह थे भारतीय जनता पार्टी के वर्तमान महासचिव श्री गोविन्दाचार्य।

वस्तुतः भेंट अशोकजी और मेरी ही थी और उसका सूत्रपाती विषय था अशोकजी के एक प्रकाशित लेख के आधार पर उनसे हिंदू महासभा में सम्मिलित होने का निवेदन करना। इस संदर्भ में अशोकजी और मेरी जो चर्चा हुई वह इस लेखन की परिधि से बाहर है। तथापि अशोकजी से किये इस निवेदन का अनपेक्षित उत्तर श्री गोविंदाचार्य से जो अकस्मात सामने आया वह था "जिस संस्था में गांधीजी के हत्यारे है ऐसी संस्था मे हम लोग सम्मिलित नहीं हो सकते।" ऐसे प्रश्नों पर जिस पद्धति से विषय समापक उत्तर देना आवश्यक होता है उसी पद्धति से मैंने उत्तर दिया। तथापि तब से ही मेरे मन में एक प्रश्न बार-म्बार पैदा होता रहा कि अन्ततोगत्वा हम भी तो ऐसे प्रश्नों के पैदा होने के लिए कुछ न कुछ उत्तरदायी है। हिंदू महासभा के मंच का उपयोग इस विषय के लिए अनाधिकार रूप से होता है। वस्तुतः श्री गोपाल गोडसे अपने स्वीकृत कार्य को सम्पन्न करने में जब पूर्णतः सक्षम है और इस जनतांत्रिक देश में जब उन्होंने अपने अधिकारों को न्यायालय के माध्यम से क्यों न हों प्राप्त कर लिया है तो हिंदू महासभा का मंचीय सहारा उनके लिए किसी भी प्रकार आवश्यक नहीं है। हिन्दू महासभा के कर्णधारों को इस विषय को गंभीरता से लेना चाहिए। इसी मन्तव्य से 10 जून 1991 की हिंदू सभा वार्ता में प्रथम पृष्ठ पर "पं. नाथूराम गोडसे की योग्यता का लोहा न्यायाधीशों ने भी माना था" शीर्षक से 4 जून 91 को पुणे में श्री गोपालजी द्वारा दिए गए पत्रकार वार्ता के वक्तव्य के अंश जब प्रकाशित हुये तब 18 जून 91 को मैंने हिंदू सभा वार्ता में प्रकाशनार्थ एक पत्र प्रेषित किया। पत्र में मैंने लिखा कि गोपालजी की उक्त पत्रकार वार्ता गांधी हत्याकांड-नाथूराम गोडसे विषय से संबंधित है और इसका हिंदू महासभा से कोई संबंध नहीं है। अतः हिन्दू महासभा के मुखपत्र साप्ता. हिंदू सभा वार्ता में इसका प्रकाशन मर्यादाओं का उल्लंघन है।

पत्र में आगे मैंने यह अभिमत भी व्यक्त किया कि हिंदू महासभा के केन्द्रीय कार्यालय दिल्ली के साहित्य विक्रय भण्डार के माध्यम से गांधी हत्या विषय संबंधी साहित्य के विक्रय की व्यवस्था और हिंदू सभा वार्ता में उसका विज्ञापनीय रूप में प्रकाशन अपना कोई औचित्य नहीं रखता। इस आशय का मेरा पत्र आठ जुलाई 91 की हिन्दू सभा वार्ता में प्रकाशित अवश्य हुआ, पर पत्र के नीचे संपादकजी जो कि अखिल भारतीय हिंदू महासभा के अध्यक्ष भी हैं की टीप इस प्रकार प्रकाशित है—हिंदू महासभा लोकशाही मानने वाली संस्था है। विचार स्वातन्त्र्य भी मानती है। इसी कारण श्री विक्रम ओकजी के विचारों से सहमत न होते हुए भी उनके विचार प्रकाशित किए जाते हैं। वार्ता के वाचक इस पर अपना-अपना निर्णय करें। टीप के समापन वाक्य पर मैं भी पाठकों से निवेदन करना उचित समझता हूं कि वे निर्णय करें कि क्या कोई जनतांत्रिक संगठन उसके सर्वोच्च ही क्यों न हो पदाधिकारी को इस प्रकार के निर्णायक अधिकार देता है? और इस बात पर भी विचारें कि क्या मात्र मतसंख्या के आधार पर जिन पर निर्णय लिया जाता हो ऐसे विषय किसी जनतांत्रिक संगठन में निस्सीम होते हैं?

मेरे पत्र पर संगठन के वरिष्ठतम अधिकारी ने जो टीप प्रकाशित की है वह ऐसे ही नहीं की गई है। वह तो इस विषय में उनका दृढ़ और निश्चित मत प्रतीत होता है। इसलिए कि 24 जून 1991 की हिंदू सभा वार्ता में अ.भा. हिंदू महासभा के वरिष्ठ उपाध्यक्ष पं. इन्द्रसेन शर्मा का (पण्डित नाथूराम गोडसे और श्री नारायण आपटे की फांसी का वृत्तांत) शीर्षक से एक लेख प्रकाशित किया गया हैं। लेख निश्चय ही कुछ जानकारी देने वाला है। और इस प्रकार के लेख अन्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने चाहिए। 8 जुलाई 91 की हिंदू सभा वार्ता में उक्त लेख पर जिस पत्रिका के सम्पादक ने इस विषय पर खुली बहस चलाने की मांग की है उस पत्रिका में या (हिंदू अस्मिता) में या अन्य पत्र-पत्रिकाओं मे इस विषय पर बहस होनी चाहिए।

23 जनवरी 1978 के इंदौर से प्रकाशित दैनिक नई दुनिया के अंक में श्री गोपालजी गोडसे ने "नाथूराम गोडसे का बयान और मैं' शीर्षक से "गांधी हत्याकांड और गोपाल गोडसे" शीर्षक वाले उसी पत्र में 24 दिसंबर 1977 को प्रकाशित नागपुर के पत्रकार श्री प्रकाश दुबे के लेख का उत्तर देते हुए प्रश्नार्थक शैली से लिखा है कि "प्रकाश दुबे पत्रकारिता से संपर्क रखते है' मेरी धारणा है कि वे प्रेस स्वातंत्र्य पर प्रतिबंध नहीं चाहते हैं। तो वे क्यों चाहते हैं कि मात्र यह वक्तव्य ऐसी काल-कुप्पी में (टाइम केप्सूल) दबाया जाए कि जो मानकवंश समाप्त होने तक दबा ही रहे। क्या दुबेजी की रूचि के राज में मेरे जैसे व्यक्ति सदा के लिए अस्पृश्य एवं दलित ही रहेंगे?) श्री प्रकाश दुबे द्वारा लिखित लेख की प्रति मैंने ही तब श्री गोपाल गोडसे को प्रेषित कर आग्रह किया था कि वह इस लेख का उत्तर दें। उल्लेखनीय है कि तब मैं मध्यप्रदेश की शासकीय सेवा में राज-पत्रित पद पर अर्थशास्त्र का प्राध्यापक था। एतदर्थ आज हम इस विषय की प्रस्तुति किसी तरह भयग्रस्त होकर नहीं तो तर्क और नीति के आधार पर कर रहे है। संगठन में हितों को दृष्टिगत रख कर रहे हैं।

इस बृहद लेखमाला के समापन पर इस अंतिम विषय के संबंध में यह लिखने की इच्छा होती है कि टेबल-टेनिस की टेबल पर टेनिस खेलने की बात हास्यास्पद होती है तो टेनिस कोर्ट में टेबल-टेनिस के बॉल को फुदकाते देख दया-सी आती है। मन तो दोनों ही स्थितियों में व्यथित होता है। और कह उठता है कि देश का विभाजन करने वाली कांग्रेस कभी गांधीजी के नाम पर, कभी गरीबी हटाओ जैसे नारे उछाल कर तो कभी कश्मीर और पंजाब के हिंदूओं की रक्षा का स्वांग रच कर भी दिल्ली की सत्ता पाने के राजनीतिक खेल में पारियों पर पारियां जीतती जा रही हैं और जिन्हें कुछ लोग कल तक कबड्डी खेलने वाले भर मानते थे कबड्डी के मैदान से निकल कर कभी भारतीयकरण तो कभी गांधीवादी-समाजवाद का शब्दजाल फैलाकर तो 'वर्तमान में जय श्री राम और हिंदू एकता का घोषनाद करते हुए आगे ही बढ़ते जा रहे हैं और हिंदू महासभा वीर सावरकर के दिये राष्ट्र उद्धारक हिंदुत्ववाद को पूजा की पोथी बना शून्यसंतोषी बनी जा रही है। क्या इस के नेताओं ने कभी इस बात पर विचार किया है कि इस इतिहास सम्पन्न संस्था को विराट शून्य में विलीन होने से कैसे बचाया जाये?

सात कड़ियों तक चली इस प्रदीर्घ लेखमाला के अंतिम विषय के संबंध में हम इतना अवश्य कहना चाहेंगे कि म. गांधी नाथूराम गोडसे और गांधी हत्या प्रकरण अब इतिहास का विषय बन चुके हैं अतः इन्हें चौराहों या चुनावी सभाओं का विषय न बनाते हुए इतिहास से पाठ सीखने के मंतव्य से उचित परिधि में ही चर्चा तक सीमित रखे। पं. नाथूराम गोडसे के अनुज श्री गोपाल गोडसे अपनी वाणी और सक्षम लेखनी से इसी प्रयास को चलाए हुए हैं। अंत में एक बात और! हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि म. गांधी और पं. नाथूराम गोडसे दोनों ही इसी देश समाज और धर्म से सम्बन्धित व्यक्तित्व थे न कि विदेशी और न ही राष्ट्रद्रोही। ऐसे में किसी भी पक्ष द्वारा इस विषय की चर्चा को विवाद तक ले जाना तो एक बार क्षम्य माना जा सकता है पर उसे आपसी विद्वेश की स्थिति तक पहूंचाना कदापि नहीं। क्योंकि यह तो ठीक वैसा ही होगा जैसे पीढ़ियों से दो घरानों में चलती आई शत्रुता हो। राष्ट्र की उन्नति आपसी शत्रुता से नहीं तो सौहार्दता से ही सम्भव है और यही हमारी संस्कृति भी है।

स्थानाभाव के कारण

'हे राम! तुम ही जानत पीर हमारी' लेखमाला की चौथी और अन्तिम कड़ी १ अक्टूबर ९१ के अंक में प्रकाशित की जावेगी।

विरोधियों यहां तक की शत्रुवत् तत्वों के विरुद्ध भी हमारा लेखन साधार होता है। आलोचना मात्र, आलोचना के लिये या विरोध के लिये नहीं तो सुधार, परिवर्तन, के मंतव्य से होती है।

'बड़े लोगों के बड़े प्रमाद-समापन [सातवीं] कड़ी

विरोधभाव को चिरजीवो शत्रुता में न बदले

ऐसे में गांधीजी की भूमिका यदि शेष भारत के हितचिंतक नेता की रहती तो कदाचित उस समय के लिए जो हिन्दू देश विभाजन की उनकी भूमिका को भूल जाता, पर इसे देश का दुर्भाग्य ही कहना होगा कि ऐसी विषम परिस्थिति में भी गांधी जी देश की रक्षा-सुरक्षा से बढ़कर हिंदू मुस्लिम एकता को महत्व देते हुए एक प्रकार से राष्ट्रीय रुप से अपराधी सिद्ध हुए। मुस्लिम समाज के पक्षपोषण में ही अपनी शक्तियों और प्रभावों को प्रयुक्त करने की मानो उन्होंने ठान ली। सहसा दिल्ली, पंजाब ही नहीं तो देश का शेष भाग जहां का हिन्दू अब तक की घटनाओं को नियति का निर्णय मान शांत था उसकी गांधीजी के प्रति श्रद्धा लुप्त हो कर उनके प्रति रोष बढ़ता चला गया। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के स्वयंसेवक भला इससे कैसे अछूते रह सकते थे। उनमें तो पहले से ही एक प्रखर प्रकृति का वर्ग था जो संगठन के नेताओं पर आश्वस्त रह कर अनुशासन के मारे मौन बना रहा था। अब उसका भी मौन सहसा टूटने लगा। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ विशेषकर युवकों का समसैनिकी स्वरूप का संगठन था। उसके इस महत्व को गांधीजी भलीभांति समझते थे। ऐसे में इन युवकों को पूर्वानुसार उदासीन बनाये रखने हेतु गांधीजी ने बहुत सक्रियता दिखाई। 'दि आर एस एस स्टोरी' शीर्षक के अपने ग्रंथ में श्री के.आर. मलकानी लिखते हैं कि रा.स्व. संघ के दिल्ली प्रांत प्रचारक श्री वसन्तराव ओक की गांधीजी के साथ अनेक बैठकें हुई थीं। इन दोनों में सम्बन्ध स्थापित करने का काम श्री जी.डी. बिर्ला ने किया था और बिर्ला सेठजी ने ही उस भंगी कालोनी में कुछ कक्ष राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ को दिए थे जिस भंगी कालोनी में गांधीजी रहते थे।

10 सितम्बर 1947 के मुस्लिम लीग के विफल दिल्ली षड्यन्त्र के अनन्तर हिन्दुओं में मुस्लिमों के प्रति द्वेष भावना का उत्पन्न होना सहज ही था। ऐसे में मुस्लिम हितों की सुरक्षा के प्रति चिन्तित गांधीजी ने 12 सितम्बर को सरसंघवाहक श्री गोलवलकर गुरुजी को भेंट हेतु आमंत्रित किया। श्री गुरुजी वायुयान से कलकत्ता जाने की तैयारी में थे कि गांधीजी का फोन से संदेश मिला और प्रातः 10 बजे गुरुजी गांधीजी से मिलने बिड़ला भवन पहुँचे। चारों ओर हो रहे दंगों से गांधीजी परेशान थे। वह यह अनुभव कर रहे थे कि उनके शांति संदेश की लोग उपेक्षा कर रहे हैं इसलिए उन्होंने श्री गुरुजी के सम्मुख अपनी व्यथा व्यक्त करते हुए कहा कि 'आज मेरी आवाज कोई नहीं सुनता।' श्री गुरुजी ने तब गांधीजी को आश्वासन देते हुए कहा कि अंग्रेज हमेशा कहते थे कि जब हम भारत छोड़कर चले जाएंगे तो ये लोग एक-दूसरे के गले दबाने लगेंगे। हम उनके उसी कथन को मानो सही सिद्ध कर रहे हो। कुछ भी हो हमें यह सब बंद करना ही होगा। गांधीजी ने शाम की प्रार्थनासभा में श्री गुरुजी की उक्त भावना का उल्लेल भी किया था। गुरुजी इस प्रयत्न में सचेष्ट रहे। अपने बौद्धिकों में वह पुनः-पुनः आदेश देते रहे कि प्रत्येक स्वयं सेवक को शांत संयमित होकर तथा अपने कार्य पर दृष्टि केन्द्रित कर चलना चाहिए। जब हम आपस में लड़ते हैं, तब हम पांच हैं। लेकिन कोई पराया सामने खड़ा हो तो हम एक सौ पांच हैं वयं पंचाधिक शतम्।

श्री गुरुजी से भेंट में गांधीजी द्वारा व्यक्त इच्छा के अनुसार 15 सितम्बर 1947 को भंगी कालोनी के मैदान पर गांधी जी का 500 संघ कार्यकर्ताओं के साथ वार्तालाप का कार्यक्रम भी आयोजित किया गया था। इस प्रकार गांधीजी संघ स्वयंसेवकों तथा हिंदुओं की भावनाओं का शमन करने में सचेष्ट थे। तथापि मुस्लिमों और पाकिस्तान के प्रति उनकी भावनाओं में किसी भी प्रकार कोई कमी नहीं आई थी। फलतः हिन्दुओं एवं संघ स्वयंसेवकों में गांधीजी के प्रति रोष बढ़ता ही चला गया। और इस सीमा तक पहुंचा कि गांधीजी के निवास स्थान के सामने 'गांधीजी को मरने दो' 'खून का बदला खून से लेंगे' जैसे नारे भीड़ द्वारा लगाए जाते रहे। 13 जनवरी 1948 को जब गांधीजी ने अनशन आरम्भ कर अपने ही देश के शासन के निर्णयों को वापस लेने के लिए ब्रम्हास्त्र चलाया तो संघ स्वयंसेवक तथा हिंदु समाज में गांधीजी के प्रति एक चिढ़-सी उत्पन्न हो गई।

30 जनवरी 1948 को गांधीजी की हत्या का समाचार जब हवा के साथ फैला तब हत्या जैसे कर्म के प्रति सुरूचि नहीं रखने वाले हिन्दुओं ने भी इस हत्या का कोई तीव्र विरोध किया हो ऐसी बात नहीं। यदि उनके हृदयांतर को पढ़ने की कोई विधि तब होती तो कदाचित उस पर कम से कम इतना लिखा हुआ तो अवश्य मिलता जो गांधी हत्याकांड के अभियुक्त श्री गोपाल गोडसे अपनी गवाही में आयोग के सम्मुख कहा था (गांधीजी को राजनीतिक मंच से विना हटाए हिन्दुओं का और हिंदुत्व का संरक्षण नहीं हो सकेगा) ऐसा उनका मत था। जिस प्रकार क्रान्ति कुछेक साहसी लोगों द्वारा ही की जाती है और कालान्तर में वह जनक्राँति की संज्ञा को इसलिए प्राप्त हो जाती कि सफल क्रांति के साथ भीड़ जुट जाती है। उसी प्रकार ऐसे साहसी कृत्य करना सभी के बस की बात नहीं। पर मन ही मन लोग ऐसे कृत्यों की सराहना करते है। कुछ लोग भावनावेग में कुछ आगे बढ़कर समर्थन भी करते हैं।

गांधीजी की हत्या पर कुछ इसी प्रकार संघ स्वयंसेवकों ने अपनी खुशी को प्रकट किया था आज 43 वर्षो के उपरांत 23 जून का अंग्रेजी साप्ताहिक आर्गनायजर का सम्पादकीय यह भले ही लिख दे कि 1948 के अर्थात गांधी हत्या की घटना के उपरान्त मिठाई बाँटने का प्रचार मनगढ़ंत है। पर यदि हम में वास्तविकता देखने का साहस हो तो वह कुछ-कुछ इसी प्रकार की दिखाई देगी। इंदौर से प्रकाशित दैनिक नईदुनिया में 11 मई 1979 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के एक पूर्व स्वयंसेवक श्री वेदप्रकाश मिश्र के प्रकाशित पत्र में यह स्वीकार किया गया था कि (बापू के खून की खबर सुनकर मैं खुश हुआ था। "19 मई 1979 के एक अन्य पत्र में श्रीमती इन्दु मेहता ने लिखा था कि (जिस दिन गांधीजी की हत्या हुई उस दिन शाम को शाखा से लौटने पर मेरे चचेरे भाई ने गांधीजी की हमारे घर में लगी हुई तस्वीर दीवार से उतारी और जमीन पर पटककर उस पर कूदने लगा। चिल्लाने लगा अच्छा हुआ बुड्ढा मर गया। हमारा परिवार तिलक, गांधी-नेहरू का भक्त परिवार था। मेरी माँ को धक्का लगा और माँ ने उसे डाँटना शुरु किया। यह सब तुमने कहाँ से सीखा? मां ने पूछा। बच्चे ने रोते-2 उत्तर दिया शाखा में बातें हो रही थीं।" मां ने उस दिन से उसका शाखा में जाना बंद कर दिया।

निश्चय ही ऐसे उदाहरण बिरले ही होते हैं। फिर भी इंदौर के एक समाचार-पत्र में ही ऐसे दो पत्र प्रकाशित हुए यह भी कुछ कम तो नहीं! ये स्वयंसेवक बेचारे अपनी भावनाओं को कहीं और किसी प्रकार व्यक्त कर गए उन्हें क्या पता था कि संघ के सरसंघचालकजी की भावनाएं क्या थी? क्योंकि श्री गुरुजी की भावनाएं तो 31 जनवरी 1948 को उनके द्वारा देश के प्रधानमंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू को लिखे पत्र में, अर्थात दूसरे दिन प्रकट हुई थी। श्री गुरुजी ने अपने पत्र में लिखा था (कल मद्रास में मैंने अत्यन्त हृदयविदारक समाचार सुना कि किसी अविवेकी एवं दुराग्राही आत्मा ने गोली द्वारा पूज्य महात्माजी के जीवन का आकस्मिक एवं भयंकर अंत करके एक जघन्य दुष्कर्म कर डाला है। संसार की दृष्टि में यह नीच कर्म हमारे समाज पर एक कलंक है। यह देखकर कि हमारे अपने ही देश के निवासी ने यह कल्पनातीत घृणित कुकर्म किया। अपना प्रत्येक देशवासी असह्य वेदना से परिपूर्ण हो उठेगा। एक ऐसे कुशल कर्णधार के ऊपर आक्रमण जिसने अनेक प्रतिकूल प्रकृति वाले व्यक्तियों को एक सूत्र में बांधकर योग्य मार्ग पर प्रवृत्त किया। एक व्यक्ति नही वरन सारे संसार के प्रति विश्वासघात है। निःसंदेह-आप अर्थात आज की सरकारी सत्ताएं ऐसे देशद्रोही व्यक्ति के प्रति उसके योग्य व्यवहार करेंगे। यह व्यवहार कितना भी कठोर क्यों न हो हानि की तुलना में कोमल ही रहेगा।)

सरसंघचालक श्री गुरुजी के विचारों की धरा पर पंडित नाथूराम गोडसे के विचारों को देखना समीचीन होगा। गांधी हत्याकांड के अभियुक्त नाथूराम गोडसे ने न्यायालय के सम्मुख जो बृहत निवेदन पेश किया उसमें कहा है कि "अब मैं भारत विभाजन की दुर्घटना और गांधीजी के वध की चर्चा करूंगा। मुझे इन बातों की चर्चा करके प्रसन्नता नही होती परंतु भारतवासियों को और सारे संसार को उन 30वर्षों के इतिहास कापता होना चाहिए जिससे भारत के टुकड़े किये जाने की भूमिका बनी" आगे उन्होंने कहा है कि (इस स्थिति में हिंदुओं को मुसलमानों के अत्याचारों से बचाने का एक ही उपाय था कि गांधीजी का अंत कर दिया जाये। मुझे स्पष्ट दिखायी देता था कि यदि मैं गांधीजी का वध करूंगा तो मैं जड़ सहित नष्ट कर दिया जाऊंगा। लोग मुझ से घृणा करेंगे।

वास्तव में मेरे जीवन का उसी समय अंत हो गया था गांधीजी पर गोली चलाई थी। उसके पश्चात मैं अनासक्त जीवन बिता रहा हूं। मेरे लिए यह संतोष का विषय है कि मुझे कोई पश्चाताप नही है। गांधीजी ने देश को छल कर देश के टुकड़े किये। क्योंकि ऐसा न्यायालय या कानून नही था जिसके आधार पर ऐसे अपराधी को दण्ड दिया जा सकता। इसलिये मैंने गांधीजी को गोली मारी। उसको दण्ड देने का केवल यही एक तरीका रह गया था। यदि मैं यह नही करता तो मेरे लिये अच्छा ही होता। परंतु स्थिति बहुत खराब हो गई थी और मेरे हृदय में इतना अधिक क्षोभ था कि मैंने सोचा कि "गांधीजी को स्वाभाविक मृत्यु से नही मरने देना चाहिये। मैंने इस समस्या का अंत इसी प्रकार करना चाहा क्योंकि इसी से लाखो निर्दोष हिंदुओं का जीवन बच सकता था। आप मेरी इस भावना को जिस प्रकार देखना चाहे देखें और इस भावना के

(शेष 3 पेज पर)

पा. हिन्दु अस्मिता-सम्पादक, स्वामी विक्रम गणेश ओक (विक्रमसिंह) प्राध्यापक द्वारा विश्वास कमर्शियल एजेन्सी, 55/2, माली मोहल्ला, इन्दौर से मुद्रित एवं 'अभिनव भारत प्रकाशन' 16, एम. आय. जी. (शाप कम रेसीडेन्स) नन्दानगर मेनरोड, इन्दौर मध्यप्रदेश, 452008 से प्रकाशित। दूरभाष : 37948